ग्यारह सितम्बर और अन्य कविताएँ

रचनाकार : कुमार मुकुल

प्रकाशक: *मेधा बुक्स, एक्स-11, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032*
वर्ष: *2006*
भाषा: *हिन्दी*
विषय: *कविताएँ*
पृष्ठ संख्या: *120*
ISBN: *81-8166-138-9*

सुबह / कुमार मुकुल

चांदनी की

रहस्यमयी परतों को दरकाती

सुबह हो रही है

जगो

और पाँवों में पहन लो

धूल मिट्टी ओस

और दौड़ो

देखो-स्मृतियों में

कोई हरसिंगार अब भी हरा होगा

पूरी रात जग कर थक गया होगा

संभालो उसे-उसकी गंध को संभालो

जगो

कि कुत्ते सो रहे हैं अभी

और पक्षी खोल रहे हैं

दिशाओं के द्वार

जगो

और बच्चों के स्वप्नों में

प्रवेश कर जाओ।

आकाशगंगाओं के पार / कुमार मुकुल

अन्तरिक्ष की पतंग

जब डूब रही है पश्चिम में

सैकड़ों पतंगें

उड़ने लगी हैं

पटपड़गंज के आकाश में

बहुमंजिली सोसाइटियों से घिरे

इस निम्न-मध्यवर्गीय इलाके में

जैसे उत्सव है आजकल पतंगों का

इस समय

जब सोसाटियों के बच्चे

जूझ रहे होंगे

टी.वी., कम्प्यूटर से

ये उड़ा रहे हैं पतंगें

ऊँची उड़ रही हैं पतंगें

तमाम सोसाइटियों से ऊँची

मन्दिरों-मस्जिदों-गुरुद्वारों से ऊँची

राधू पैलेस से भी ऊँची

पतंगों की डोर खींचते बच्चे

ख़ुशी और उत्साह से भरे

चीख़ रहे हैं

चिल्ला रहे हैं

अजानों व कीर्तनों स्वरों को मात देते

अपनी-अपनी छतों से

अपने भाई-बन्धुओं-बहनों-प्रेमिकाओं के साथ

कभी-कभी

कोई पतंग कटती है

तो उठता है शोर

तमाम छतों से

और गूँजता खो जाता है कहीं

आकाशगंगाओं के पार

फिर,

अपने नीड़ों की ओर लौटते

तेजी से डैने मारते

पखेरूओं के साथ

उतरने लगती हैं

पतंगें भी

नीचे।

राजनीतिज्ञ / कुमार मुकुल

विचलन तो दूर की बात है

डर की एक लौ भी नहीं छूती उन्हें

उन्होंने पढ़ रखी है गीता

वे मार सकते हैं स्वजनों को

वे जानते हैं तुम्हें

कि तुम लाचार हो कितने कि विनम्र हो

जो अक्सर हास्य

रीझे तो व्यंग्य कर सकते हो।

एनकाउंटर / कुमार मुकुल

आज फिर दुख की तसवीर देखी मैंने

एक माँ और दो बच्चे थे उसमें

एक बच्चे के हाथ में फोटू थी

एनकाउंटर हुए पिता की

यह तस्वीर स्थानीय पुलिस की बनाई थी

पुलिस तस्वीरें बना रही है

कितना क-ला-त्म-क ख़याल है यह

यूँ...पुलिस को ऐसा बनाया किसने

तस्वीर में माँ की आँखें

तलाश रही हैं आकाश

पर आकाश की तस्वीर

आ नहीं पाई है फ्रेम में

वह माँ की आँखों में है

इस दुख को

अरेंज किया होगा फ़ोटोग्राफ़र ने

काश... वह अरेंज कर पात

सूना आकाश भी... तो

ज़्यादा कीमत मिलती उसे

तस्वीर के एक बच्चे की आँखें भी

आकाश तलाश रही हैं

पर उसका एंगेल दूसरा है

फोटू संभालते दूसरे बच्चे की आँखें

ऐसी हैं... जैसे वह

कक्षा में खड़ा अपनी स्लेट दिखा रहा हो

उस पर जो लिखा है

उसे कौन पढ़ेगा...

फोटू में पिता की

कॉलेज लाईफ़ की तस्वीर है

जिसमें भौंचक है वह

तस्वीर की स्त्री

चौखट के भीतर की तरफ़

टिककर बैठी है

एक लड़का बाहर सीढ़ियों पर है

दूसरा भीतर माँ के कुछ पीछे

चौखट पर नीचे किया गया पीला पेंट

और उस पर बने लाल फूल

ज़ाहिर कर रहे हैं

कि तस्वीर आन्ध्र प्रदेश की है

स्त्री ने लाल साड़ी लपेट रखी है

मृतक की कमीज़ सफ़ेद है

एनकाउंटर तो नक्सली भी करते हैं

पुलिस वालों का

उनके घरों से भी

ऐसी तस्वीरें निकल जाएंगी

अन्त में ये तस्वीरें ही बचती हैं

बन्दूक की नली से बनाई गई तस्वीरें

ऐसी ही होती हैं

पूरी नहीं बनतीं वें

क्योंकि एक आँख से

बनाई जाती हैं वे

और एक आँख से

पूरा आकाश नहीं दिखता

उससे बस उड़ती चिड़िया दिखती है।

हथियार / कुमार मुकुल

पड़ा रहने दो उन्हें

अंधेरे कोनों में

तुम्हारी स्याह होती दुनिया में

जब भी

संशय की कोई आँख उगेगी

हाथों में ढाढ़स की तरह आएगा वह

हाथ में लेते हुए

उसे नहीं

खुद को तोलोगे तुम

जितनी कड़ी होगी

संशय की भाषा

उतनी ही ज़ोर से बोलोगे।

हत्यारा / कुमार मुकुल

शहर और कस्बे की

मुठभेड़ कराती

उस सड़क के आस-पास

जिधर

पड़ता था

आम और बेर का जंगल

इलाका था उसका

जिधर

घूमा करता था वह

कमरबन्द में चाकू

और पगड़ी में मुँह छुपाए

जहाँ कभी घूमा करते थे सियार

भुट्टों की खेती के आस-पास

भेड़ों के झुंड में

गड़ेरिए के साथ

उन्हीं की-सी सूरत निकाले

छिपा फिरता था वह

जितना ही गहराता था अंधेरा

उभरता था उसका चेहरा उतना ही

और

भूले-भटके बटोही की

घिग्घी बंध जाती थी

यह सब बीते दिनों की बातें हैं

याद करते हैं लोग

उस वक़्त होते थे हत्यारे

फिर भी लोग साहसी होते थे

अब तो

रिवाज ही बदल गया है

जगह-जगह लगा दी गई हैं आरियाँ

अनवरत चलती रेतियाँ

और लोग

जमात की जमात गरदनें लिए

चले आ रहे हैं

अब हत्यारे

खोते जा रहे हैं अपना चेहरा

अपनी क्रूरता

विज्ञान की चकाचौंध ने

सबसे ज्यादा लूटा है

उनके हिस्से का अन्धकार

आज एक मिटती प्रजाति हैं वे

भयानक पर निरीह

अभयारण्यों में जगह और

इतिहास में शरण

की मांग करते हुए

पूछते हुए कि क्या

उनके इतिहास में ज्यादा ख़ून है

कि हमारे आदिकवि तुम्हारे नहीं

अंगुलिमाल होते हुए भी

हमने पहचाना बुद्ध को

गांधी को पहचान सके तुम

और तो और

लुटेरे गजनी को भी

लूटा था हमने

क्योंकि

हम तो थे ही हत्यारे, लुटेरे, बटमार।

सन्तोषम परम सुखम / कुमार मुकुल

सन्तोष बड़ा सुख है

ज्ञानी विचार से सन्तुष्ट होता है

बुद्धिमान तर्क से

मूरख अपनी आस्थाओं से सन्तुष्ट होता है

और जड़ अपनी जड़ताओं के टूटने से

तमाम डरों के प्रति अपनी जिज्ञासाओं से

सन्तुष्ट होते हैं बच्चे

बच्चों के डरों को जानकर

ख़ुश होते हैं बूढ़े

कि वे भी उन्हीं के समान हैं

लगाम कसे जाने पर

बिगड़ैल घोड़ों की तरह भागता

युवा ख़ुश होता है

तमाम पाबिन्दयों को बिसारकर

सन्तुष्ट होती है युवती

युवा समझे जाने पर किशोर ख़ुश होता है

नवोदित वक्षों में खदबदाती

गौरैयों को छेड़कर

खुश होती है किशोरी

विरह में प्रेमी ख़ुश होते हैं

मिलन में कामी

बन्धने पर तन ख़ुश होता है

स्वतन्त्र छोड़ देने पर मन

हवाई दुर्घटनाओं की ख़बर सुनकर

क्रान्तिकारी ख़ुश होता है

कि चलो दलालों की एक खेप कम हुई

ख़बरों को पाकर

ख़बरनवीस सन्तुष्ट होता है

उन्हें दबाकर संपादक

पर राजनीतिज्ञ और हत्यारे

कभी ख़ुश नहीं होते

अपने हर क़दम के बाद

ख़ुद को वे

और घिरा पाते हैं।

देवता दुखी हैं / कुमार मुकुल

दुखी हैं देवता

कि मनुपुत्र लगातार

आदमी होते जा रहे हैं

कोई मौक़ा ही नहीं दे रहे

अवतार का

युग बीता

जब कामी और उदंड

ब्रह्म-हत्यारों की

सोमरस से अर्चना करते-करते

थक जाता था वह... यहाँ तक कि

आसन मार-आँखें मूंद

बैठे-बैठे मुनी हो जाता था

अब तो तैंतीस के नाम भी

याद नहीं उसको

जबकि आदमियों के नाम

उसकी जबान पर रहते हैं

चन्द्रगुप्त, सिकन्दर, नेपोलियन, अशोक, अकबर,

शिवाजी, टीपू, सीजर, क्लियोपेट्रा, होमर, पूश्किन

तुलसी, रैदास, थोरो, तालस्तोय, टैगोर, गांधी, लेनिन, माओ,

मर्लिन, चैप्लिन, नेहरू, सुभाष...

देवता दुखी हैं कि ये

अवतार के जन्मस्थल का

फ़ैसला करने में ही

युग लगा दे रहे

एक मन्दिर का ठेका दिया आदमी को

तो उसके नाम की ईंटें उसने

अपने घर में चिनवा दीं

मन्दिर के चन्दे से दंगे करवा दिए

और चुनाव जीत

अपने बनाए स्वर्ग में

अपनी सीट पक्की करा ली

देवता दुखी हैं

कि परम्परा और चन्दन-टीका के नाम पर

चन्दा कर चुनाव जीतने वाले ये ठेकेदार

कालिदास की तरह

दो अंगुलियां दिखा-दिखाकर

विकट-अरि, विकट-अरि चिल्लाते हैं

देवता दुखी हैं कि स्वर्गलोक में

रसद कम पड़ गई है

सारा पैसा ठेकेदारों को दे देने के बाद

उनका स्वर्ग

गोलकोंडा का किला रह गया है

और इससे पहले कि ये उसे

पर्यटनस्थल घोषित कर दें डालर के लिए

देवता विचार कर रहे हैं

कि अब विचरना छोड़

सीधी कार्रवाई पर उतरें

और शरण लें पूर्व की तरह

किसी मानवी के गर्भ में

और स्वर्ग के पुनर्जीवन की जगह

विवेकानन्द-जोतिबा-भगतसिंह की तरह

इस धरती को ही स्वर्ग बनाने को

कुछ करें... कुछ करें

और नहीं तो

शहादत ही दे मरें।

आज / कुमार मुकुल

अशोक राज-पथ, सिकन्दर लेन, शाहजहाँ-पथ

कभी मुल्क होता था

जिन सम्राटों-शहंशाहों के नाम

आज

जोगा रहे हैं वो

एक-एक सड़क।

डर / कुमार मुकुल

डर अगर कहीं घर करता है

तो मरता है कुछ

तुरत-फुरत मरे या देर से मरे

भीतर मरे या दूर सड़क पर

व्यवस्था के अंधेर से मरे

हरियाली मरे या रास्ता मरे

या आदमी से आदमियत का वास्ता मरे

नज़र मरे या उसका पानी मरे

या पानी के भीतर की रवानी मरे

पर मरता है कुछ

आत्महत्या कर मरे या समाधि में मरे

या किसी चौंक पर

शहादत की उपाधि ले मरे

अकेला मरे या समूह में मरे

या दाँत और जीभ के दबाव में

कटु सच की तरह हमारे मुँह में मरे

पर मरता है

इसीलिए दोस्तों

वर्मा जी की बातों में मत पड़ो

डरो मत

चाहे हो मौत ही

उससे भी लड़ो।

सफल कवि / कुमार मुकुल

हिटलर को कोसता

स्टालिन को सर नवाता

किसी गोष्ठी की अध्यक्षता को

आगे बढ़ जाता है सफल कवि

यूरेका यूरेका

ध्वनित होता है

उसकी हर कविता से

हर पंक्ति उसकी

पत्थर की लकीर होती है

ख़ास आदमी के ऐश्वर्य की

खिल्लियाँ उड़ाना आता है उसे

मंजिल बहुल अपने आफिस से

लिफ़्ट को त्याग

सीढ़ियों से

नीचे आता है सफल कवि

और मानता है

कि इस तरह वह

आम आदमी के निकट आता जा रहा है

पूरी दुनिया

नंगी आँखों देखना चाहता है वह

पूरी धरती रौंदना चाहता है

नंगे पांव

पर लोग हैं

कि करने नहीं देते कुछ

आम जन की समझ में

कर्मठ

और अपनी नज़रों में

सबसे बड़ा काहिल होता है सफल कवि

नवागंतुकों से

सुहागनों की तरह

पेश आता है सफल कवि

बातों का घूंघट

सलीके से करता है

विचारों से

पति-परमेश्वर की तरह

मिलाता है मुश्किल से

क़लम को

कूची की तरह पकड़ता है

सफल कवि

और चेहरों को

चूल्हों की तरह पोत देता है

फिर महसूसता है

कि उसकी नसों का ताप

ठंडा पड़ रहा है।

गोबर पवित्र / कुमार मुकुल

(`कुछ भी खाकर करती है गोबर पवित्र´ -प्रेमरंजन अनिमेष की इस कविता-पंक्ति को पढ़कर)

दिल्ली में या हैदराबाद में

बहुत सम्मान है गायों का

पतियों की व्यस्ता से ऊबी स्त्रियों की

साथिन हैं, वही

उन्हें अपने हिस्से की पूरी-मिठाई खिलातीं

बतियातीं-मनुहार करतीं वे

चलो हटो माते, द्वार से अब

बच्चे आने को हैं

हटो, थोड़ा श्रम भी करो माते

कि द्वार-द्वार खाकर भैंस हो रही हो

बहुत कुछ सड़क पर भी है

पोली पैक

थोड़ा उधर भी मुँह मारो

अरे-रे छि: छि:

यह क्या किया माते

चिपचिपी कुत्ते के गूँ सी

बास मारती विष्ठा

ओह, माते

तुम तो अपने कर्तव्य भी भूल रही हो

`गोबर पवित्र´ किया करो माते

`कुछ भी खाकर´।

संत समागम / कुमार मुकुल

गाय को कभी देखा है आपने

सिर उठाकर बाँ करते हुए

अपने बछड़ों को आवाज देते हुए

मुद्रा तो वही थी उस गाय की भी

पर आवाज़ नहीं थी कहीं

बाँ की

मुँह पर जाब भी नहीं था

और बछड़ा भी नहीं था कहीं

दूर-दूर तक

ना ही किसी कसाई के यहाँ खड़ी थी वह

दरअसल, एक गो दुग्ध-प्रेमी के घर के बाहर का

दृश्य है यह

जहाँ उसके ऊँचे लौह-दरवाज़े से

बाँ गया है गाय को

नथुनों और गले से बंधी रस्सी को

दम भर खींचकर

ऊपर ग्रील से बांध देने के बाद

के इस दृश्य में

गोपालक

थनों से लगकर

दूह रहा है दूध

गाय को पहले जी भर डंगाने के बाद

इंजेक्शन देने तक के

मनभावन दृश्य की कल्पना

तो कर ही सकते हैं आप

बहुत अप्रिय है ना यह दृश्य

पर छोड़ें उसे

चलें महानगर की गोरक्षिणी सभा में

जहाँ गोहत्या के विरुद्ध

होने वाला है संत-समागम।

आई. सी. यू. में पिता : तीन कविताएँ / कुमार मुकुल

1

प्रासंगिक हुए कबीर

आपातकक्ष में लगातार मौतें देख

तुलसीभक्त पिता ने कहा,

कबीर ही सही हैं-- `हंस अकेला जाए´।

तब उन्हें दिया कबीर चौरा का प्रवेशांक

पीठ पर ही छपा था -

``नेमी देखा, धरमी देखा, प्रात करे असनाना

आतम मारि पखानहि, पूजै उनमें कछु नहीं ज्ञाना ´´

नियमित पूजा-पाठ करनेवाले पिता

पढ़ गए पूरी कविता

और बहस नहीं की कोई

उल्टा कहा, खरी बोलते हैं कबीर

`सत्यम अप्रियम्´ भी बोल देते हैं

पूरा पखवारा बिछावन पर रहे पिता

छूटा रहा पूजा-पाठ-स्नान

बिना मुँह धोए खाना तक खाया किया

यह नहीं कि आस्था चूक गई थी उनकी

तुलसी में या कि पूजा में

बस कबीर

प्रासंगिक हो गए थे ज़्यादा।

2

ठंडी पड़ती राख संग

पिता को दवा-दूध दे

आयुर्विज्ञान संस्थान से निकला

तो देखा

कि चांद

पूरा फेंटा खोले हँस रहा है

मैंने पूछा -

कि मुँह तो आपका भी सूख रहा होगा

लीजिए पी लीजिए

थर्मस का बचा बासी पानी

और ढार दिया जल सारा

सड़क के पार-पूरब

उधर चिचिया रही थी टिटहरी

अरी-क्या तुझे भी पेट दर्द है

चल, भरती करा दूँ

फिर तो पीछे

लग गया चांद भी ...

मैंने पूछा - टांग दूँ अपना झोला

तुम्हारे सर पर ...

बस ठीं-ठीं-ठीं

निकम्मा कहीं के

जब देखो - पूरा अवाढ़ खोले

बौराते रहते हो

ठीक है - ठीक है साथ दे रहे हो

वहाँ नर्सें भी साथ दे रही थीं

अपनी सफेद पोशाक में

मरते हुओं के स्वागत में मुस्कराते हुए

अचानक

कितनी सक्रिय हो जातीं थीं वे

भाग-दौड़

मार दवा, सिरींज, अक्सीजन

और अंत में लुढ़क जाना किसी का

फिर सारी सक्रियताओं का सिमट जाना

मुस्कराहटों में -

समझाना -

कि बाहर जाकर रोइए

बाकी भी हार्ट पेशेंट हैं

फिर लाश ढकते हुए

अपनी स्निग्ध मुस्कराहटों में डूबने देना

आपात कक्ष को

जैसे शमशानों में अभी

तुम्हारी चांदनी खेल रही होगी

चिताओं की ठंडी पड़ती राख संग।

3

टिमटिमाते तारों के बीच

नाक-मुँह से जुड़े

चिकित्सकीय सरंजामों को झटक

खुली हवा की

मांग की उसने

आख़िर खोली गई

वातानुकूलित आपात-कक्ष की खिड़की

जिससे

आने लगे मच्छड़

चिंतित हुए पड़ोसी

और चुप रहे

फिर

बिछावन छोड़

ऊपरी मंज़िल के फ़र्श पर

आ बैठा वह

और लगा कुछ टटोलने

जैसे ज़मीन खोज रहा हो

सबको लगा

कि कुछ ठीक हो चुका है वह

नर्सों और परिजनों ने

वापिस उस प्रौढ़ को

ला लिटाया बिस्तर पर

तब जल की मांग की उसने

पर हवा-ज़मीन की तरह

जल से भी

उसके ही हित में

वंचित किया गया उसे

और

एक झटके में

शांत हो गया वह

अब

आग तो

मिल ही जाएगी उसे

शवदाहगृह में

और आकाश में

जगह भी थोड़ी

टिमटिमाते तारों के बीच।

मनकी मेरी माँ / कुमार मुकुल

जैसी माटी थी उसके देश की

काली-काली

उसके केश थे जो चिपक जाते

तो सूझता नहीं कि क्या करें

देश ही था उसका

हेठार के आगे

गांगी रोकती थी राह

पार का सब

देश ही था दूसरा

एक पोखर था गाँव में

खच्चर चरते हैं अब वहाँ

वहीं नहाती थी सखियाँ समेत

डाँटते थे भैया

कि डूब जाएगी मनकी

हालाँकि मज़बूत थी

खींच लाती मरकहे बैल नाद तक

जी करता सानी भी गोंत दे

मैनिया गाय थी दुआर पर

सफेद पूँछ वाली

उसकी हिलती सींगों पर

तेल इंगोरती थी मनकी

उधर बप्पा भईया जाते कचहरी

इधर सूखी गांगी लांघ

लाल-पीली साड़ी पहन

गंगा के कछारों को

चल देती मनकी

सिनहा, सलेमपुर, त्रिभुआनी घाट

दो कोस का रहता

टप जाती कित-कित करती

खेतों से चुराकर फूट चबाती

और

सियार की तरह

हुआँ हुआँ करती भाग जाती मनकी

बन्दरों को मारती ढेले

मिलते नीलगाय, हिरण

उसके पेंचदार सींगों को पकड़कर

झटझोरा करती

तो उलझकर फट जाता आँचल

और फूट पड़ती उसकी हँसी

फिर तान तुड़ा भागती

जाकर कूद जाती गंगा में

चली जाती दूर तक

जहाँ चकवा के झुंड

खिल रहे होते

कमलों की तरह

खिल जाती वह भी

फेनिल लहरों पर सवार

उसकी हँसी

जब टकराती तटों से

तो कट-कटकर

गिरने लगती किनारों की मिट्टी

घर लौटती

तो घेर लेते बच्चे-

वह समझाती

बड़े और बड़े हो जाओ बबुआ

फिर ले चलूंगी गंगा जी

ललमूंहे बन्दर होते हैं वहाँ

नोच लेते हैं मुँह बच्चों का

कए-कए पोरसा दो

पानी होता है

डूबे

तो अछरंग किसे लगेगा

काडियों से काले-काले

सोंस

पलटते रहते हैं गंगा में

बच्चों को देख

लगाने लगते हैं डुबकी

हबर-हबर।

वह एक चेहरा / कुमार मुकुल

वह एक चेहरा

और उसके मुखर ओठ

चूजे की चोंच

खुली हो जैसे

एक दाने के लिए।

खुशी / कुमार मुकुल

दृश्यों के विस्तार में

सिमटी रहती है

सपाट जल-तल के नीचे

बस एक कंकडी

और किल्लोल लहरों का

छू लेता है तट

फिर

वही एकालाप

लम्बा-सफेद-स्याह।

दफ़्तर में लड़की / कुमार मुकुल

अपने मित्र को खोजती

आई एक लड़की

लगा सामान्य नाक-नक्शा है

फिर सुन्दर लगी वह

और मुस्कराई

तो फूट पड़ी पाँत दाँतों की

जैसे फूटी हो हँसी

मैंने समेटी हँसी

और आ बैठा कमरे में चुपचाप।

प्रेम के बारे में / कुमार मुकुल

क्या बता सकता हूं मैं

प्रेम के बारे में

कि मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है

सिवा मेरी आँखों की चमक के

जो जून की इन शामों में

आकाश के सबसे ज़्यादा चमकते

दो नक्षत्रों को देख

और भी बढ़ जाती है

हुसैन सागर का मलिन जल

जिन सितारों को

बार-बार डुबो देना चाहता है

पर जो निकल आते हैं निष्कलुष हर बार

अपने क्षितिज पर

क्या बताऊ मैं प्रेम के बारे में

या कि

उसकी निरंतरता के बारे में

कि उसे पाना या खोना नहीं था मुझे

सुबहों और शामों की तरह

रोज़-ब-रोज़ चाहिए थी मुझे उसकी संगत

और वह है

जाती और आती ठंडी-गर्म साँसों की तरह

कि इन साँसों का रूकना

क्यों चाहूंगा मैं

क्यों चाहूंगा मैं

कि मेरे ये जीते-जागते अनुभव

स्मृतियों की जकड़न में बदल दम तोड़ दें

और मैं उस फासिल को

प्यार के नाम से सरे बाज़ार कर दूँ

आखिर क्यूँ चाहूँ मैं

कि मेरा सहज भोलापन

एक तमाशाई दांव-पेंच का मोहताज हो जाए

और मैं अपना अक्स

लोगों की निगाहों में नहीं

संगदिल आइने में देखूँ।

चार क्षणों में / कुमार मुकुल

उन चार क्षणों में

जो हँसता हरा-नीला रंग

तुम्हारी आँखों में चमका था

क्या था वह

क्रोध में तुम्हारी आँखें काली हो जाती हैं

और हँसी में सब्ज़

क्या वह सामने पहाड़ियों पर उगे दरख्तों की छाया थी

या आसमाँ की रंगत या दुपट्टे की

पूरे वक़्त तुम च्यूंगम में लपेटकर

लोगों का घूरना चबाती रही

और मैं तुम्हारे रूप में

अरूप होता रहा।

सम्बन्ध / कुमार मुकुल

उफ़ कितनी गरमी है आजकल

तुम होतीं तो पसीना पोंछती कहतीं

कितनी गरमी है-- उफ़

नहा लेते फिर तो अच्छा होता

मैं कहता

अच्छा होता कि हम

अलग बिस्तरों पर सोते आज

तब तुम मेरे सिर या छाती पर

छलक आया पसीना पोछतीं

फिर चूम लेतीं

नाराज़ होता मैं

कि कितनी गरमी है आज

और बाँहों में उठा

पास के बिस्तर पर लिटा देता

फिर बैठ जाता पास ही

कि अब सोओ तुम

मैं पंखा झल दूँ

तुम्हें नींद आने को होती

कि चूम लेता मैं

नाराज़ होतीं तुम

और मुझे पास खींचती

कहतीं

जाओ सोओ ना।

मजाक चांद का / कुमार मुकुल

नामुराद प्रेमियों पर

बड़ा गुस्सा आता है चांद को

कि निकलते हैं वो चांद देखने के बहाने

पर आपस में ही तल्लीन हो जाते हैं ऐसे

कि याद ही नहीं रहता

कि ऊपर चांद भी है

ऐसे में चांद भी बाज नहीं आता है

पहले तो वह

मैदान में चरते घोड़ों को गुदगुदाता है

और वे चरना छोड़

लगते हैं हिन-हिनाने

और इससे भी बात नहीं बनती

तो उकसा देता है कुत्तों को

अब उठते हैं प्रेमी

और चांद ख़ुश होता है

कि चलो ख़याल तो आया

पर वे फिर आपस में गुम हो जाते हैं

चांद घास के नीचे तब

छुपा देता है पत्थर

पर गिरते-संभलते

बढ़ते ही जाते हैं वे

तब पीछे-पीछे

दरवाज़े तक

आता है चांद

और निराश हो

अपनी छाया वापिस ले लेता है

और बाहर खड़ा

इंतज़ार करता थक जाता है

तो झाँकता है खिड़की से

और पाता है

आपस में लिपटे वे सो रहे हैं

और वह भी वहीं

बिछ जाता है।

उसके गाल रक्तिम लाल हो उठे / कुमार मुकुल

श्रुति से लेकर कुमार कौस्तभ द्वारा अनूदित अलेक्सांदर पूश्किन की प्रेम कविताएँ पढ़ते हुए

उसके बाल थे

बहुत काले

मुलायम

जिन्हें उंगलियों में लपेटता

पीछे बैठा रहता मैं

कभी

उसकी हथेली

होती

मेरी हथेली में

घुलती

किस कदर

कि अचानक वह

खींच लेती उसे

एक दोपहर

उसने लगा दी मुझे बिन्दी

और ठिठियाती रही देर तक

तब

उसे

उसके पोरो से पकड़ता

आहिस्ता खींचता

बाँहों में भर लिया मैंने

और भरता चला गया

वह मुस्कुराती रही धीमे

कभी-कभी भागती वह

और झूल जाती कंधों से

दोहरी होती हुई

तब उसे बाँहों से पकड़

सीधा करता मैं

और कंधों से लगाए

बातें करता रहता

वे रातें

उसके सपनों से भरी होतीं

अल्लसुबह

गुड मार्निंग कहती वह

और मेरी सुबह होती

उठकर

चूल्हे के पास जाता मैं

जहाँ खड़ी वह भगोने में खदकती

चाय को घूर रही होती

जैसे कोई रहस्य

छिपा हो वहाँ

तब धीमे से मैं भी

उसके कंधों पर पीछे से

अपना चेहरा टिकाता

खदकती चाय को

देखने लगता

धीरे-धीरे मेरी बाँहे

अपना वृत बनातीं

जिसमें उर्ध्व लता सी दोलती

वह खिलखिलाती रहती

तब मेरे गाल

उसके गालों को

छू रहे होते

फागुन के दिन थे वे

होली नजदीक थी

आश्चर्य

ना उसने मुझ पर रंग डाला था अब तक

न मैंने उसे -

तो सामने की लत्तर से

गहरे गुलाबी पत्तों का एक झोंप

तोड़ा मैंने

और उसके कपोलों पर मसल डाला

मैंने देखा

गुलाबी रंग

मेरी हथेली पर आ लगा

और उसके गाल

रक्तिम

लाल हो उठे।

अनुपमा / कुमार मुकुल

मैं जब भी उसकी आँखों में देखता

मेरे बालों में फिरते उसके हाथ मेरी आँखें

ढक लेते

मैं अपने हाथ उसकी हथेली पर रख देता

और मेरा देखना जारी रहता

इसी तरह मैं सपनों की दुनिया में चला जाता

और फिर गहरी नींद में

और जगता तो लगता कि जैसे सुबह हुई हो

धीरे-धीरे मैं अपनी आँखें खोलता

तो देखता वह पास बैठी है और उसकी

आँखों से

शीतल प्रकाश वैसा ही झर रहा है

जिसकी स्निग्धता में डूबी दोपहरी

सुबह में बदल रही है

इसी तरह शाम हो जाती फिर रात व सुबह

अब वह कहीं भी होती

स्निग्धता की लहर में मैं डूबा रहता

लॉन में हम चार-पांच जन टहलते रहते

कोई बात निकलती

सब समझते कि बात क्या है इससे पहले ही

वह हँसती हुई

मुझ पर दोहरी हो जाती

मेरे अहम का प्रस्तर कवच धसकता हुआ

उसके आवेगों का वस्त्र बन जाता

मेरी अस्थिमज्जा में स्नेह का द्रव सुरसुराने

लगता

और अपनी एक बाँह से मैं उसे थम लेता

वह क्या अनुभव करती थी

इसे कौन जान सकता है

अक्सर हम बहुत पास होते

कभी-कभी मैं उसका हाथ चूमने की

कोशिश करता

पर चूमते-चूमते रह जाता

वह कितने पास थी

उसका हाथ जैसे मेरा ही हाथ था

लगता

अपना हाथ भी क्या चूमा जाता है

एक बार उसने पूछा मैं मर जाऊँ

तो आप क्या करेंगे

तुम्हारे बनाए गुलाबों को देख जिऊंगा -

बोलते हुए लगा - उसके बनाए गुलाब

और वह

अपनी रचनाओं में और प्रतिकृतियों में

कितना आ पाता है आदमी

कितना है मेरा बेटा सामने लटकी तस्वीर में

क्या उससे बाहर आकर

मेरे कान उमेठ सकता है वह

या मेरी गरदन दबाते हुए

मेरी निकलती जीभ को देख

और घुरघुराहट को सुन खुश हो सकता है

अपने जीते-जागते बन्दों में कितना है ईश्वर

और बन्दों में ही जब नहीं आ पाता है वह

तो बन्दों की बनाई मूर्तियां में

कितना आ पाता होगा ?

यह सब सोचता घबरा गया मैं

मैंने पूछा - मानिनी

तैंतीस की इस उमर में

बाल तो मेरे सफेद हो चुके हैं

मरने की मेरी गुंजाइश ज़्यादा है

इस पर घबरा गई वह

मेरा हाथ दबाते बोली

नहीं, आप नहीं मर सकते -

नहीं मर सकते आप

मैं हँसा-- कैसे मर सकता हूँ मैं भला -

वह जब पड़ोस में निकलती

तो बेला के फूल ले आती

आपको पसंद हैं ना - पर तुमसे ज़्यादा नहीं

नहीं, भागती नहीं थी वह शरमाकर

शरमाती तो थी ही नहीं वह

(अपने आप से शरमाना, कितना बड़ा धोखा है -बोलती वह)

बल्कि पास ही बैठ जाती दुखी-सी

अपनी कामनाओं के लिए तब ख़ुद को

प्रताड़ित करता मैं

और फूलों को छुपा देता क़िताबों में

जैसे उसे ही छुपा रहा होऊँ

पर सुबह देखता तो वह वहाँ नहीं होती

फूल-भद्दे, काले पड़ गए होते

और अपनी करनी पर

मैं पछता रहा होता

वह जब भी बरतन मांज रही होती

उसकी पीठ मेरी ओर होती

मैं जानता था, उसकी आँखें

अभी पीठ में उगी हैं

उसके हाथ बरतन को

विचित्र तरीके से घिस रहे होते

जैसे उस गंदले जल में

मेरा चेहरा आ-जा रहा हो

तब मैं राय देता कि ऐसा करो

कुछ पत्तलें और काग़ज़ की प्लेटें

मंगवा लिया करो

ब्याह का घर है,

काम बढ़ जाता है कितना ?

फिर तो तमक जाती वह

जाइए यहाँ से -

चले जाइए एकदम

मैं पानी से भरा जग उठाता

कि लाओ मदद कर दूँ

फिर तो बिफ़र जाती वह - जाते हैं

कि दूँ पोत

फिर अपना चेहरा उठाए मैं बाहर आ जाता

और देखता

दो मिनट में काम निबटाकर

वह बाहर आ गई है

और उसकी पलकें भीगी हैं

मैं पूछता, रो रही है क्या मानिनी ?

और हँस देती वह झन्न से -

और मैं भाग खड़ा होता - आखिर पकड़ाता

और वह गले से लगी हाँफ रही होती

उससे मेरा रिश्ता ही मज़ाक का थ

पर मज़ाक वह कम ही करती थी

वह भी रिश्ते को निबाहने की मज़बूरी में

जैसे, लोग क्या कहेंगे ?

पर हर मज़ाक के बाद

वह दुखी हो जाती

मैं उसे झूठ-मूठ का डराता और वह

वास्तव में डर जाती

और कहीं छिप जाती

फिर मैं भी उसे इस तरह खोजता

कि वह नहीं ही मिलती

तब वह सामने आकर बैठ जाती

मैं सोचता, अब तो पकड़ी गई -

पर हैरान रह जाता - कि अपने पाँव -

उसने किस तरह

अपनी आँखों में छुपा रखे हैं

मैं हार जाता और कहता

कि अबरी माफ़ किया

एक दिन मौसी ने कहा

कि बहुत मज़बूत है मानिनी

पंजा लड़ाने में अपने भाइयों को भी

हरा देती है

मैंने भी पंजा लड़ाया और हार गया

और ख़ूब ढिंढोरा पीटा - कि मैं तो हार गया

पर वह दुखी हो गई कि ऐसी जीत

उसे पसंद नहीं

मेरे ज्ञान पर वह अक्सर

आश्चर्य व्यक्त करती

और पूछती -

फिर आप ऐसी मूर्खताएँ क्यों करते हैं !

जैसे कि मझे अनुपमा कहते हैं -

या ऐसी ही फालतू बातें

मैं बोलता कि मानिनी लाओ मैं तेरे बाल

गँथ दूँ

और उसे गौरी फिल्म की याद दिलाता -

वह चिढ़ जाती -

मुझे अंधी समझ रखा है क्या ?

लाइए अपना सिर -इधर -

और अपनी आँखें बन्द कीजिए

....

....

....

पाँच वर्षों बाद मिले हम

हमारी कोशिश रहती कि हम पास रहें

पर जब वह पास आती

तो मैं कहीं खो जाता

वह टोकती

मुझे बिठाकर ख़ुद -

मैं अकचकाता-- अरे हाँ -

मैं तो वर्षों से उससे मिलना

बातें करना चाहता था

ढेर सी

फिर मैं कहाँ खो गया -

वह उसकी

प्रतिकृति तो नहीं

जो स्मृतियों में रहते-रहते

ऐसी जीवित हो गई है

कि उसकी सजीव

उपस्थिति में भी

मेरा ध्यान खींच ले रही है -

तो क्या यही रचना है - सच्ची रचना

क्या इसी तरह आदमी ने रचा होगा ईश्वर को भी

अपने मूल से भी सच्चे व खरे रूप में

- तो क्या मानिनी

केवल अपने माता-पिता की प्रतिकृति है

और उसका जीवन उसके समय की रचना है

जिसमें प्रकृति है और मैं हूँ

और मेरे जैसे कितने ही रचनाकार हैं

- तो क्या माता-पिता की मानिनी

वह नहीं है

जो अपने सहेलियों की है

या जो अपने भाइयों की है

वह मानिनी मेरी नहीं है

क्या मेरी मानिनी मेरी आकांक्षाओं का स्वरूप है

या उसमें मानिनी की भी

आकांक्षाएँ हैं

और यही उसे

दूसरों की मानिनी से अलग करते हैं।

चेख़व का बिम्ब / कुमार मुकुल

ऊँचे कद-काठी की लकदक देह पर झूलते

ढीले सफ़ेद कुरते में दोलती

कोई न्यूकमर प्रशासिका थी वह

अपने गदराए काले बुलडाग से उसके लाड़ को देख

यह साफ़ था कि वह ... या ... है

कुत्ते के गले में कोई शिक्कड़ नहीं था बस बेल्ट थी

पर युवती की निगाहों और इशारों के बंधन को

वह बख़ूबी समझ रहा था

उसकी चील सी काउंस आँखों में

लाड़ में लोटते हुए भी

एक तीखी शिकारी चमक थी

सर्किट हाउस के फ़र्श पर पंजों के बल दोलती

युवती के डोलते वक्ष

दो अन्य झबरों से लग रहे थे

जिन्हें अपने झबरेपन से अंधी होती आँखों

और सिर पर किसी स्पर्श की प्रतीक्षा थी

उनकी कुकुआहट साफ़ सुनी जा सकती थी

युवती की आँखों पर हल्का काजल था

या आँखें ही सुरमई थीं पता नहीं

जो कुत्ते पर केंद्रित थीं

अब कुत्ते को बाहर छोड़ युवती ने किवाड़ भिड़का ली

घूम-घाम कर कुत्ते ने हल्की दस्तक दी और

अंदर हो गया

और चेख़व की

सफ़ेद कुत्तों वाली महिला का बिम्ब बाधित हुआ

जिसे पड़ोस की बालाएँ जीवित करती रहती थीं

और - जीवन को बच्चों की बाधाओं से

मुक्त रखने के आकांक्षी पत्रकार एस.पी.सिंह का

दुख याद आया

जो उनके मृत कुत्ते के प्रति प्रतिबद्ध था।

आसमानों को / कुमार मुकुल

आसमानों को

फुनगियों पर उठाए

कैसे उन्मुक्त हो रहे है वृक्ष

आएँ

बटाएँ इनका भार

और मुक्त होकर हँसें

हँसें

ठहाके लगाएँ

हँसें

कि आसमान

कुछ और ऊपर उठ जाए।

बारिश-2 / कुमार मुकुल

भादो की ढलती इस साँझ
लगातार हो रही है बारिश

हल्की
दीखती बमुश्किल

उसकी आवाज़ सुनने को
धीमा करता हूं पंखा
पत्तों से, छतों से आ रही हैं
टपकती बड़ी बूंदों की
टप-चट-चुट की आवाज़ें
छुपे पक्षी निकल रहे हैं
अपने भारी-भीगते पंखों से
कौए भरते हाँफती उड़ान
उधर लौट रहा मैनाओं का झुंड
अपेक्षाकृत तेज़ी से
पंखों पर जम आती बूदों को
झटकारता।

पहाड़-2 / कुमार मुकुल

कैसा वलंद है पहाड़

एक चट्टान

जैसे खड़ी होती है आदमी के सामने

उसका रुख मोड़ती हुई

खड़ा है यह हवाओं के सामने

चोटी से देखता हूँ

चींटियों से रेंग रहे हैं ट्रक

इसकी छाती पर

जो धीरे-धीरे शहरों को

ढो ले जाएंगे पहाड़

जहाँ वे सड़कों, रेल लाइनों पर बिछ जाएंगे

बदल जाएंगे छतों में

धीरे-धीरे मिट जाएंगे पहाड़

तब शायद मंगल से लाएंगे हम उनकी तस्वीरें

या बृहस्पति, सूर्य से

बाघ-चीते थे

तो रक्षा करते थे पहाड़ों की, जंगलों की

आदमी ने उन्हें अभयारण्यों में डाल रखा है

अब पहाड़ों को तो चिड़ियाख़ानों में

रखा नहीं जा सकता

प्रजनन कराकर बढ़ाई नहीं जा सकती

इनकी तादाद

जब नहीं होंगे सच में

तो स्मृतियों में रहेंगे पहाड़

और भी ख़ूबसरत होते बादलों को छूते से

हो सकता है

वे काले से

नीले, सफ़ेद

या सुनहले हो जाएँ

द्रविड़ से आर्य हुए देवताओं की तरह

और उनकी कठोरता तथाकथित हो जाए

वे हो जाएँ लुभावने

केदारनाथ सिंह के बाघ की तरह।

एक कुत्ते की तरह चांद / कुमार मुकुल

इस बखत ठंड भयानक है

और ठिठुरता हुआ मैं

बैठा हूँ कमरे में

बाहर चांद एक कुत्ते की तरह

मेरा इंतज़ार कर रहा होगा

अभी मैं निकलूंगा

और पीछे हो लेगा वह

कभी भागेगा

आगे-आगे बादलों में

कभी अचानक किसी मोड़ पर रुककर

लगेगा मूतने

और फिर

भागता चला जाएगा आगे।

चेहरा / कुमार मुकुल

सूरज सिर पर हो

तो मैं नहीं समझता

कि आदमी का चेहरा साफ़ दिखता है

आँखें चौंधियाती सी हैं

चांदनी में चेहरा दिखता तो है

पर पढ़ा नहीं जाता

गोधूलि और प्रात अच्छे हैं

जब चेहरे खिलते और बोलते हैं

पर तारों की रोशनी में

तो रह ही नहीं जाता चेहरा

पूरी देह होती है चुप्पी में डोलती

अन्धे शायद सही समझते हों

तारों भरी रात की भाषा

जिसे वे बजाते हैं अक्सर

और प्रेमी भी

जो बचना चाहते हैं तेज़ रौशनी से

जिनके लिए आँख की चमक भर रौशनी ही

काफ़ी होती है।

चांद-तारे / कुमार मुकुल

काँसे के हँसिए सा

पहली का चांद जब

पश्चिमी फलक पर

भागता दिखता है

तब आकाश का जलता तारा

चलता है राह दिखलाता

दूज को दोनों में पटती है और भी

भाई-बहन से वे साथ चहकते हैं

पर तीज-चौठ को बढ़ती जाती है

चांद की उधार की रौशनी

और तारा

तेज़ी से दूर भागता

सिमटता जाता है ख़ुद में

आकाश में और भी तारे हैं

जो जलते नहीं टिमटिमाते हैं

पर वे चांद को ज़रा नहीं लगाते हैं

निर्लज्ज चांद

जब दिन में

सूरज को दिया दिखलाता है

तारों को यह सब ज़रा नहीं भाता है।

महानगर / कुमार मुकुल

सुबहें तो तुम्हारी भी

वैसी ही गुंजान हैं

चिड़ियों से-कि किरणों से

व भीगी खुशबू से

बस तुम ही हो इससे बेजार

कुत्ते की मानिन्द सोते रहते हो

तुम्हारे नाले विराट हैं कितने

बलखाती विविधताओं से पछाड़ खाते

और नदियों को

बना डाला है तुमने

तन्वंगी

और तुम्हारी स्त्रियाँ

कैसी रंगीन राख पोते

भस्म नज़रों से देखती

गुज़रती जाती हैं।

गली महानगर की / कुमार मुकुल

सुबह या शाम

नहीं होती यहाँ

दोपहर होती है

वह भी इतनी सी

जैसे-किसी मजदूर की चेट में

भर दिन की मशक्कत के बाद

आया हुआ नोट हो

जिसके पूँछ हो सवालों की

कि कहाँ

रखी जाए

खाई जाए कैसे

कि कितनी बचाई जाए

आपके हिसाब से

कैसी होनी चाहिए सुबह

ऐसी ही न कि रोशनदान से जब

धूप के कतरे झाँकने लगें

तो मेमसाहब को

बाँहों में भरते कहें आप

कि यार उठो भी

सूरज

सिर पर आ गया।

फलक पर चांद / कुमार मुकुल

आकाशगंगाओं पर

चांदनी का कोई दबाव नहीं है

और तारे मार कुलबुला रहे हैं

किसी ने आसमान से

ज़रा सा सिर निकाला हो जैसे

फलक पर झाँकता है चांद

उसके तांबई सिर के नीचे

झाँकती आँख-सा

चमकता एक तारा

पास ही है।

चांदनी है / कुमार मुकुल

चांदनी है और मेरी छाया मेरे पीछे चल रही है

आगे एक काली बिल्ली चली जा रही है

मेरा डर मेरे हृदय में समाता है

और मुँह से निकलती है सी... ई...

बिल्ली पहले दुबकती है

फिर उछाल मारती है

अपने-अपने झबरे को सू-सू कराने

निकली है गोरी छोरी

सफेद झबरा चांदनी के टुकड़े की तरह भागता है

उसे हवा लगती है बिल्ली की

और भूँकता है वह

भागती है बिल्ली

पर चांदनी को तो

भंभोड़ ही डालता है वह।

चांदनी का टीला / कुमार मुकुल

चांद को देखते हुए

मैं तय ही नहीं कर पाता

कि खुश हूँ या उदास

झुंझलाहट में

पास खड़े बच्चे से पूछता हूँ

बता तो चांद कहाँ है

पहले वह अपनी छाया देखता है

फिर इशारा करता है आकाश की ओर

और ज़मीन पर उभरे चांदनी के टीलों को दिखाता है

तब मुझे लगता है

कि चांद की बात करते हुए हम

चांदनी में डूबी चीज़ों की बात करते हैं।

बेदिनी में चांद / कुमार मुकुल

ठिठुरती उजाड़ होती रात में

जब सुनागरिक सोने की तैयारी कर रहे होंगे

जीवन की डोर थामे खड़े हैं वृक्ष

चांद है कि इस डोर को हौले-हौले डुला रहा है

भूखा जैसे भोजन के सपने से गुज़र रहा हो

या नामालूम-सा कोई व्यक्ति

किसी की मीठी निगाह से

अपनी इस बेदिनी में मैं भी

चांदनी के ख़्वाबहगाह से गुजर रहा हूं

इस बड़े मैदान में

जहाँ शाम तक लड़के खेल रहे होंगे

कुहासे में भीगे मिट्टी के टीलों से

अभी चांदनी खेल रही है।

स्मृतियों में शरद / कुमार मुकुल

शरद आ रहे हो तुम

कलिय काल की

लाल जिह्वा को

शीत निष्क्रियता की

केंचुलाती बांबी में डाल

तुम्हारा यह कवि

अपनी बाँहें पसार

तुम्हारी भीगी पदचापें सुन रहा है

मौसम में थिराती खुनक का रंग

असंख्य रोम कूपों से घुल-घुलकर

मेरी आत्मा के ताप को

सहला रहा है

और मैं देख रहा हूँ कि आ रहे हो तुम

दूध धुली दन्तावलियों से

युवा निगाहों को कुतरती

किशोरियों की

खुटखुटाती अंगुलियों में

नुकीली सलाइयाँ थमा

उनकी नज़रों का कोरापन

नीले-पीले ऊनों से भरते

आ रहे हो तुम

आ रहे हो तुम

आओ देखो

अल्लसुबह

नदी के थिर जल में

डुबकी लगाकर निकला बूढ़ा

भपा रहा है कैसा

और गेरुओं के साथ भरी दुपहरी में

पानी उछालते बच्चे

कैसे जल रहे हैं तुम्हारी ठंडी आग में

कि जितना उछालते हैं पानी

उससे ज्यादा लपेटते हैं रेत

गर्म-गर्म

अपनी देह में

आ रहे हो तुम

और ला रहे हो दिन

जब सबसे ज़्यादा फूलती हैं रोटियाँ

आँच पर

जब टुह-टुह लाल

दिखती है ठोर सुए की

जब रूप पर भारी पड़ता है स्वाद

होरहे का

और मुँह पर

कालिख़ लपेटते

खाते हैं हम उसे

दिन आ रहे हैं

जब छील-छील देती है जीभ

मिठास ईख की

चीर-चीर ओठों को जब

चाटती बतास है

आ रहे हैं दिन

और उससे ज़्यादा

आ रहे हो तुम

स्मृतियों में हमारी

तुम्हारे आने की तैयारी में

ऐसी व्यग्र है कल्पना

कि तुम्हारी उपस्थिति से गुज़रती

बढ़ रही है आगे

और कह रही है

कि जा रहे हो तुम

जा रहे हो तुम

और सन्तुलन हमारा साथ जा रहा है

जा रहे हो तुम

और पगला रही है हवा

नोचे जा रही है सीरत मौसम की

पर भारी हो रहे हैं

पाँव मौसम के

और उसकी आँखों में

चंचल हो रहा है कोई रस

गुनगुना सा।

कटनी / कुमार मुकुल

दिशाएँ बदलतीं चैती हवाएँ जब

बादलों के रहबच्चों पर

रहम करने लगती हैं

तब वे सुबह का इंतज़ार नहीं करते

तीसरा पहर बीतते न बीतते

हँसिए सा चांद झलकने लगता है

पूर्वी फलक पर

और हथेलियों में उनकी

दिशाओं का अंधेरा

कुत्तों की भूँक की रोशनी में

लाठियों से ठकठकाते

चले जाते हैं वे

खेत-बधारों की ओर

तब

गोरयाबाबा की लाट के नीचे

नाचते भूत, डिड़याते सांढ़ भैंसे

घुघुवाते वन-बिलाव

या

एकारी की नोंक की तरह तनीं

नहरों-सिवानों की ओट

उलझनें नहीं बनतीं उनकी

उन्हें लपटते चलते हैं वह

कथा की गठरियों में

जिसे

बच्चों की नींद के सिरहाने से

सरकाकर लपेट रखा है मुरेठे की तरह

बादलों की हरकतों से परेशान

जब पहुँचते हैं वे

गेहूँ की बालियों की कौंधों से भरे

धड़कते क्षितिजों पर

तब फलक से उतरकर चौथाई

चांद

अटक जाता है कलाईयों में

उनकी

जिसके प्रकाश में सूखी बालियाँ

छिटक-छिटककर

किनारे लगने लगती हैं

फिर

कब आता है सूरज

कब किरकिराने लगती है देह

मौसम की

कब

रोमकूपों से निकल-निकलकर

नमक

धूल से मिलकर

अकड़ जाता है

उनके चेहरों पर

नहीं जानते वह

फिर

युवा वक्षों में अदबदाते

कबूतरों की गूटर-गूँ जब

दोपहरी की किरीचों से कट-कटकर

गुम होने लगती हैं

तब आबादी की भूख को

कर्त्तव्यों की तरह

सरों पर साधते हैं वे

और उसकी छाँह में

पहुँच जाते हैं

घर की देहरी तक

और पटक देते हैं बोझ अपना

सपाट धरती की तरह फैली

अपने बच्चों की निगाहों में

शीतनिष्क्रिय लड़कियाँ / कुमार मुकुल

ख़ूबसूरत होती हैं शीतनिष्क्रिय लड़कियाँ

संगमरमर की मूर्त्तियों-सी

वैसी ही जड़ व मृत

नदी की रेत पर पड़े पत्थर-सी

इस अहसास से भरी

कि पहाड़ों व मैदानों से इन खाइयों तक की

दूरी तय की है उन्होंने

कि नदी की शीतल लहरों ने

जाने कितना किल्लोल किया है उनसे

पर वर्तमान

बस रेत पर पड़ी विरासत

जिसे कोई मनचला उठाकर चल नहीं दे

तो पड़े रहना है वहीं

दमकना है दोपहर की धूप में

चांदनी में चमकना है

ठंडाना है और पत्थर हो जाना है

मुस्कुराती हैं शीतनिष्क्रिय लड़कियाँ

कि चिनकती हैं लैंप के काँच-सी

फिर चिन्तित होती हैं

कि चिनकी क्यों सम्बन्धों की तरह

और बेतरह काँपती हैं

कि कोई देखे नहीं उनकी हँसी

छुए नहीं

कि जाने कब बिखर जाएँ वो !

धूसर बुदबुद-सा / कुमार मुकुल

शाम की बस

चढ़ रही थी फ्लाईओवर पर

चारों ओर फैले

धूल व धुएँ के अम्बार के पार से

दिल्ली द्‍वीप को देखता

एक धूसर बुदबुद-सा

डूब रहा था सूर्य

मेरे भीतर।

पेड़े रामोतार के / कुमार मुकुल

पटना के अर्धनगरीय इलाक़ों से गुज़रते

सड़क किनारे की दुकानों में लगे

शीशे के जारों में

नज़रें कुछ ढूंढ़ती रहती हैं

पाँव भागते रहते हैं

पर निग़ाहें

जारों में बन्द पदार्थों से लिपटतीं

उनका स्वाद लेती चलती हैं

पारचूनी दुकानों की धकापेल में

चौक-चौराहों पर आसन जमाते जा रहे

भूँजे की दुकानों के पास

पाँवों को अक्सर

अपनी बाग थामनी पड़ती है

जहाँ शीशे के पीछे झाँकता रहता है

चना-मूंगफली-मकई-मटर का भूँजा

और चूड़ा-फरही

कभी-कभी तिल की लाई

और अँचार अक्सर

स्वाद में लड्डू को मात देने वाले

बेसन-गुड़ के लकठों की बात क्या

और अब जबकि कोयल कूकने लगी है

और बौरों को झाड़ते

उभरने लगे हैं टिकोड़े

चैत के पसरते तीखेपन के साथ

पसरने लगे हैं सत्तूवाले भी नगर में

पटना जंक्शन के भीतर

फेरी लगाने का लाइसेंस नहीं है इन्हें

पर टिकसबाबू को टिकट देकर बहराती

धूप में सजी सत्तू-नींबू-प्याज

और कटी हरी मिर्च का गिलास पिलाने वाली

दुकानों पर

सत्तूखोरों की जमात जुटने लगती है

नगर के फुटपाथों पर

अपार्टमेंट्स की छाया में तो

भरपेटा सत्तू खानेवाले मजूरों की

अलग बैठकी ही लग जाती है

इस तरह तो

अमजीरा-भूजा-बेल और सत्तू मिलकर

आगे चाय और बिस्किट को

देश निकाला दे दें तो अचरज नहीं

यूं आज के ग्लोबल विलेज में

जीभ की जी-हजूरी कितनी करेंगे आप

पर अरसे से

सँवलाए पेड़ों का स्वाद

नहीं मिला यहाँ

सफ़ेद मैदे की लोई-सी सपाट

ऊपर से चन्दन-टीका लगाए पेड़े तो

मिल भी जाते हैं

क्वालिटी कार्नर्स पे

पर दही-चिउड़ा-खांड़-चीनी

और साँवले बीच से धँसे पेड़ों वाली दुकानें

कहाँ नज़र आती हैं अब

डेयरीवालों से दूध नहीं बचता शायद

यूँ अब वह भी बनाती है पेड़े- गुलाब जामुन

लाल, घी से चपचपाते स्वाद वाले

इसी के निकट के स्वाद वाले

पीली सफ़ेदी लिए पेड़े

रेडियो स्टेशन के पश्चिम वाली सड़क पर

मिल जाते हैं

पर कुछ ज़्यादा ही चीनी वाले

भसभसाते

जीभ पर रखते हवा हो जाने वाले

उन पेड़ों की सूरत नज़र नहीं आती

जिन्हें गाँव की गुमटी पर

या संदेश बाजार पर खिलाते थे भीम चाचा

फिर रामोतार के ही दस पैसे के

बताशे के आकार के

घर के बने खोए के स्वाद वाले

पेड़ों को कैसे भूला जा सकता है

ख़ासकर जब उस स्वाद का

एक चेहरा भी हो

यूँ तो झाल-मुरही ही बेचते थे रामोतार

पर पेड़े भी होते थे कुछ

दुबके कोने में

जिन्हें चूहे सा कुतरता खाता मैं

पैसे ना होने पर

एक रद्दी अख़बार देने पर भी

मिल जाता था एक पेड़ा

गांधी जी की तरह ठेहुने तक

धोती पहनते थे रामोतार

एक तेलकट गंजी और सिर पर

काली तख़्तियों वाली चारखूँटी टोकरी होती

बाइस साल हो गए अब तो

क्या उनके सर से उतर गई होगी टोकरी

और उन्होंने भी खोल ली होगी

अच्छी सी गुमटी...

स्कूल के आठ वर्षों में तो

उतर नहीं पाई थी वह

रामोतार की तरह

उनके पेड़ों का भी

एक चेहरा होता था

तलहथी और काले अंगूठों से

दबाकर बनाई गई

ढलवा धसान वाले पेड़े

जिन्हें अंगूठे और अंगुलियों के बीच

पोरों पर इस तरह टिकाता मैं

कि आसानी से घुमा पाता चारों ओर

और कुतर पाता उसे, कोरों से

पूर्व मुख्यमंत्री आवास के पास लगे

लेटरबाक्स से सटे हुआ करती थी कभी

दही-चूड़ा-चाय-पान की दुकान

वहाँ भी दिखते थे साँवले पेड़े कभी-कभार

जहाँ हम दीपक-राजू चाय पीते अक्सर

और पंजे लड़ाते कभी-कभार

बेंच पर बैठे-बैठे

अब तो उखड़ गई वह दुकान

मंतरी चले गए हाशिए पर

अब तो लिट्टी-चोखा-खैनी छाप

आए हैं नए मंतरी

जिनकी लिट्टी उनके विधायक-संतरी पकाते हैं

और दुकान की इजाज़त नहीं अब

सवाल सुरक्षा का है

तो क्या वे पेड़े नहीं मिलेंगे अब

अरुण कमल बताशे खिलाते हैं

पीठा-पुआ भी कभी-कभी

और प्रेम कुमार मणि के यहाँ

गुड़-घी-तेल-तीसी-मेथी के काले लड्डू

मिल ही जाते हैं साल में एकाध बार

अजय-श्रीकांत मंगाते रहते हैं भोजपुर का खुरमा

पर पेड़े कहाँ मिलेंगे

दिल्ली में गौरीनाथ खिला देंगे

सींगी मछलियाँ भूँजी हुई

बनारस में मिल जाएगा

दूध-दही-खोया काफी

गुड़ की भेलियाँ भी मिल जाएंगी

काशीनाथ सिंह के यहाँ

और दानिश खिला देंगे लवंगलता प्रसिद्ध

कनॉट प्लेस पर

सींकों पर टंगा अल्हुआ (शकरकंद) खाती

जींस-पैंट धारी लड़कियाँ भी मिल जाएंगी आपको

और जलेबी-कचौड़ी की दुकानें भी

बिहारी बहुल बस्तियों में

दर भी पटना से कुछ कम ही

पर सवाल

रामोतार के पेड़ों का है

सावन में बाबाधाम की परसादी

कहीं से आती है

तो लपककर उठा लेता हूँ

टुकड़े पेड़े के

फिर लचिदाने-चूड़े पर आता हूँ

आखिर बताशों के बाद

लचिदाने भी

एक नेमत ही हैं।

प्रीत के दो बोल / कुमार मुकुल

मूसलाधार बारिश में कौन है

गड्ढ़े के चारों ओर

ऊँचा-खाला में

रुक-रुक चलती कमर तोड़

झुक-झुक बीनती जाती कुछ

बढ़ती जो झटके से

दूधिया वक्ष

झीने आँचल के घेरे से

उचक-उचक आता है

उसे ढाँपती देखती चारों ओर

सिहरन सी उठती मन में

उसके-तेरे भी

लो लो फिसल गई

देख ली तूने

केले के थंबों सी गोरी पुष्ट जंघाएँ

लो झुकी वह

साथ तेरी नज़र भी

मूरखा है बड़ी

रुकती है जाने क्यूँ

बार-बार झुकती है

इंतजार किसका है

बीनती है जाने क्या

तमकती किस पर है किस पर झल्लाती है

बेशर्म बड़ी है, कैसे खड़ी है !

लो चल दी मचलती

आँचल में भर लिया जाने क्या ?

गा भी रही है कुछ !

खिड़की से, नज़रों से दूर जा रही है

करिया मुसहर की

वह गोरी बेटी थी

चुनती थी घोंघे

काले, बदबूदार

खेलने को? नहीं खाने को

उबकाई आती है?

दूद्धी वक्ष

देख जिसे सिहरते थे

उसमें भी गंध है घोंघों की

रंभाफल के थंबों-सी गोरी पुष्ट जंघा में

माँस है घोंघों का, चूहों का

चेंगा मछली का

खुली आँखों सपने में देखती थी वह

दुलारे कनकिरवो (बच्चों) को

घोंघों का अधपका, सुस्वादु माँस खाते चाव से

उसे भी मज़ा आता था भीगने में मेह में

पर आनंदित करते थे पुष्ट भूरे घोंघे ही

झुकती थी जिन्हें चुनने को बार-बार

इंतज़ार था उसको भी !

किसी भंवरे का नहीं

मोटे, भारी से घोंघे का

देख जिसे

पिया का हिया हुलस लगा लेगा छाती से

तमकती थी टोले की छोकरियों पर

उससे भी पहले जो चुन चुकी थीं

अच्छे सोंधे घोंघे

झल्लाती थी उठी क्यों देर से

क्यों ऐसी गलती की ?

गाती थी प्रेमगीत

नहीं !

पेट भर खा

उसका शौहर जो बोलेगा

प्रीत के दो बोल

वही गुनगुनाती थी

उसी पे इठलाती थी

झूम-झूम जाती थी।

भला होता है आदमी / कुमार मुकुल

भला होता है आदमी

बुरा होता है

गला होता है आदमी

छुरा होता है

आदमी के वश में होता है

सीधा होना

बेबस होता है

तो वह मुड़ा होता है

मुसीबतों में

टूट भी जाता है आदमी

टूट कर भी

आदमीयत से जुड़ा होता है

छोटी सी ख़ुशी में

फूट पड़ता है आदमी

छोटे से गम में

वह बेसुरा होता है।

फ़िक्र क्या जब / कुमार मुकुल

धूप मीठी और चिड़िया बोलती है डाल पर

पर पड़ोसी ढहा सा है दीखता अख़बार पर।

फाकाकशी में भी याँ को सूझती सरगोशियाँ

अगर रखना है तो तू ही रख नज़र व्योपार पर।

जानता है वक़्त उल्टा सा पड़ा है सामने

कौन सीधा सा बना है अपन ही धरतार पर।

हर तरफ कातिल निगाहें और हैं ख़ूँरेज़ियाँ

फ़िक्र क्या जब निगाहबानी यार की हो यार पर।

वही उदासी / कुमार मुकुल

फैल रही

फिर वही उदासी

झर-झर झरती

काल विवर से

अखिल धरा पर

तन-पर, मन-पर

तरुण त्वरा से

मिलकर कैसे

फूल खिलाती

चरम निविड़ में

फैलाती निजगन्ध

हवा में भीनी-भीनी

लहराती

झीनी-बीनी

सपनीली चादर

चादर ताने

सो जाता मैं

खो जाता

सपनों में

फिर वही उदासी

आती फिर-फिर

सानेट / कुमार मुकुल

जीवन ऐसे ही चलता है, रफ़्ता-रफ़्ता

अपनी राह बनाता। कभी चढ़ाता ख़ुद को

ही सर, कभी समय की सख़्त शिला से

सर टकराता, कण-कण तोड़, अगम पथों को

सरल बनाता। ख़ुद हो जाता रेती-रेती

पर लहरों संग फिरता धाता, नाद उठाता

सा-रे-गा से सप्तम स्वर तक · · ·

प्राण सुखाकर गीत बनाता, फिर-फिर गाता।

अगर कभी, मिलती ढलान जो, भागता सरपट

प्रखर वेग से, तेज चलाता गति की, मति की

अपनी ही औकात बताता, कि हहास जो

बांध रहा वह, है उसका ही अर्जित यश-बल

जनम अकारण नहीं किया है उसने अपना

ऐसा कह मन ही मन खुद को, भरमाता जाता।

इच्छाओं की कोई उम्र नहीं होती / कुमार मुकुल

इच्छाओं की कोई उम्र नहीं होती

ये इच्छाएँ थीं

कि एक बूढ़ा

पूरी की पूरी जवान सदी के विरुद्ध

अपनी हज़ार बाहों के साथ उठ खड़ा होता है

और उसकी चूलें हिला डालता है

ये भी इच्छाएँ थीं

कि तीन व्यक्ति तिरंगे-सा लहराने लगते हैं

करोड़ों हाथ थाम लेते हैं उन्हें

और मिलकर उखाड़ फेंकते हैं

हिलती हुई सदी को सात समंदर पार

ये इच्छाएँ ही थीं

कि एक आदमी अपनी सूखी हड्डियों को

लहू में डूबोकर लिखता है

श्रम-द्वंद्व-भौतिकता

और विचारों की आधी दुनिया

लाल हो जाती है

इच्छाओं की कोई उम्र नहीं होती

अगर विवेक की डांडी टूटी न हो

बाँहों की मछलियाँ गतिमान हों

तो खेई जा सकती है कभी-भी

इच्छाओं की नौका

अंधेरे की लहरों के पार।

दुख / कुमार मुकुल

इतने हँसमुख क्यों होते हैं दुख

कि प्यार आने लगे उन पर

एक का दुख कैसे भा जाता है सबको

कि गाने लगते हैं सब उसको

एक दो-तीन सात सुरों में।

मेरे पाँव / कुमार मुकुल

चेतना की गुंजलकों को

तलुओं में छुपाए

ये मेरे पाँव हैं

अंधेरी राहों में जब

मेरी सहमी आत्मा

पीछे छूट जाती है

सबसे पहले

ये ही उठाते हैं क़दम।

जूते में / कुमार मुकुल

जूते में अपना पाँव डालते ही

लगता है

कि सिर डाल रहा होऊँ

फिर वही एक आवाज़ गूँजने लगती है

ठक-ठक

ठक-ठक से ऊँचा कोई भी स्वर

हो जाता है असह्य

जिसे उड़ा देना चाहता है जूता

अपनी ठोकरों में

और ऐसा करते

अक्सर वह

मेरे अपने ही सर से

ऊपर उठ जाता है।

हाथी घृणा का / कुमार मुकुल

मेरी राह रोके एक जर्जर टीला है

जिसके विरुद्ध मेरे भीतर

घृणा का एक हाथी

चिंग्घाड़ रहा है

करुणा की एक पतली जंज़ीर है

जिससे बंधा है हाथी

हालाँकि जंज़ीर को

कभी-कभी

तोड़ डालता है हाथी

पर तोड़कर भी

जंज़ीर से इतना डरता है

कि बढ़ नहीं पाता है आगे।

नागरी चांदरी / कुमार मुकुल

नगर की छोटी-बड़ी इमारतों में जल रही है रोशनी

जो अपने चारों ओर फैले अंधकार में

घुल रही है लगातार

इस अंधेरे को मैं देख रहा हूँ

जिसमें विलीन होने को बेचैन हैं

रोशनी की असंख्य नदियाँ

यह रोशनी है या विचारों का कोढ़

जो खुजाते तो देती है सुख

पर हमारी रीढ़ गलती जाती है

और एक दिन आता है जब हम ख़ुद को

कुत्तों और गिद्धों की प्रतीक्षा करते पाते हैं।

तोताराम / कुमार मुकुल

तोताराम

शाकाहार से ही चला लेते काम

पर सोचकर कि अहिंसक हैं वे

भूलकर भी ना दें अपनी अंगुलियाँ

उनके लाल-लाल ठोरों तक

नहीं तो निकाल देंगे वे कुतरकर

आपका लाल-लाल खून

तोताराम पढ़ते हैं रामायण

बाँचते है बेद

पिंजरे से निकलकर बार-बार

बता जाते हैं आपका भाग्य

क्या अपना भी जानते हैं तोताराम ?

कोयल की कूक

माया है उनके लिए

वे ससुरी दिखती ही नहीं कहीं

जाने होती भी हैं या नहीं

गलीज गौरैयों पर तो कान भी नहीं देते तोताराम

नीच - कीड़े गटखती है

सोने की कटोरी में पानी पीते हैं तोताराम

चांदी के सीखचों में बन्द रहते हैं

परम संतुष्ट रहते हैं तोताराम

गुलामी क्या होती है नहीं जानते तोताराम

गुलामी भ्रम है उनके लिए

वे जानते हैं कि आत्मा को

ना आग जला सकती है न पवन सुखा सकता है

कि जीव अविनाशी है

रही-मिट्टी के शरीर की बात

तो उसका ग़ुलाम बनना क्या और आज़ादी क्या

उसे तो मिल ही जाना है एक दिन मिट्टी में

केवल वेद-कुरान ही नहीं पढ़ते तोताराम

साइत-कुसाईत देखकर ग़ाली भी पढ़ सकते हैं

भौंक सकते हैं कुत्ते की तरह

पुकार कर आपका नाम ख़ुश कर सकते हैं आपको

परमसत को रट चुके हैं तोताराम

उनका सत अपौरुषेय है

वे शंका भी नहीं कर सकते कि

सत स्त्रैय भी हो सकते हैं

क्षिति-पावक-समीर

सबको जानते हैं तोताराम

वे जानते हैं जनक की साधुता

याज्ञवल्क की मीमांसा भी याद है उन्हें

हिटलर के शाकाहार की भी सूचना है

बाक़ी तो ईश्वर की माया है

राम जी बचपन में हिरणों को मार-मारकर

स्वर्ग पहुँचाया करते थे

कौन जाने हिटलर भी यही करता हो

सोचते हैं तोताराम

शंका तो छू भी नहीं गई तोताराम को

बस समय से

मिलता रहे चना-चबेना

सोने की कटोरी में

फिर आपका अहित

नहीं सोच सकते तोताराम

वो आपकी भाषा बोलेंगे

आप चाहेंगे तो कुत्ते की तरह भौंकेंगे

चाहेंगे तो वेद-कुरान पढ़ेंगे

अपनी इच्छा कैसी ?

इच्छाएँ तो गुलामी पैदा करती हैं

तोताराम को

आत्मा की आज़ादी का भान है !

वह कब उगलोगे / कुमार मुकुल

सच्चाइयाँ आज कहवाघरों में पस्त होते लोगों की

बुदबुदाहटों में शेष हैं

और न्याय को

हर शख़्स

भविष्य के गर्भ में उछाल रहा है

और वर्तमान सिरे से गायब है

समय के शमशान में

मुर्दों का राज है

और मैं किसी ठूँठ की कोटर से झाँकता उलूक हूँ

नाख़ून को नैतिकता से बदलकर

कविता ने मुझे लाचार बना डाला है

अपनी सदाशयता का मैं क्या करूँ

जो एक हिंस्र भाषा के समक्ष हथियार डाल देती है

इस परिवेश का क्या करूँ मैं

जिसमें किसी की बैसाखी बनने की

औकात भी शेष नहीं

मेरा संवाद अपने समकालीनों से नहीं उन बच्चों से है

जो यतीम पैदा हो रहे हैं

हम सब कवि हैं

कथाकार और आलोचक

जो अपनी गंधाती पोशाकें नहीं फेंक सकते

क्योंकि उसमें तमगे टँके हैं

हम अपना मुख तब-तक नहीं खोल सकते

जब-तक

उसमें चांदी की चम्मच न ठूँसी जाए

हम सब भाषा के तस्कर

मुक्तिबोध को और कितना बेचेंगे

हम जो भाषा को

फँसे हुए अन्नकणों की तरह

कुरेदकर निकालते हैं दाँतों से

उसे कब निकालेंगे जिसे निगल जाते हैं

चालाकी से।

काना-लंगड़ा राजा / कुमार मुकुल

यह फ़िल्म

दुबारा नहीं देखी जा सकती

जैसे नहीं पढ़ी जा सकतीं दुबारा

विष्णु खरे की कुछ कविताएँ

अख़बार अब

सुर्ख़ सादे हैं

पत्रकार ख़बरें नहीं लिखते

अपना-अपना बीट देखते हैं

इस तरह तो

असह्य हो जाएगा यह मुलुक

मुल्क तो यह

सहिष्णु होता था कभी

उनका तो यही दोषारोपण है

जो सुरमयी रामराज

फैला रहे हैं आज

परमाणु बमों की गरमी ने तो

नहीं फैलाई यह वीभत्सता, तूफ़ान, भूकंप

या कुंभ की तिरबेणी

संभाल नहीं पा रही सारा पाप

शीत का दौर बाक़ी है अभी

चांद जैसे ठिठुरन फैला रहा है

पाजामा और चादर में डगमगाता

यह कौन चला आ रहा है

ठंड की मार है यह

या पी रखी है उसने

हमारे मुल्क ने भी चढ़ा रखी है शायद

और झटके खाता

अमेरिकी चरणोदक पी रहा है

अब राजभाषा-भाषी, ब्रह्मचारी कविराय

अगर दैनिक अंडा-मुर्गा का

म्लेच्छ भोजन करने लगें

तो यही तो होगा

काने रिक्शा वाले पर अशुभ के खयाल से

बैठने से रोकने वाले पंडत जी

काना-लंगड़ा राजा

अब कैसे भा रहा है आपको।

परम पद पाने के निकट / कुमार मुकुल

हैदराबाद के पाश इलाके को जाती

सड़क के फुटपाथ पर

पड़ा था वह- दुबला, काला

बस एक चीकट टीशर्ट पहने

धूप बिखर रही थी वसंत पंचमी की

जिसकी रोशनी में

उसकी ठोड़ी पर रिस आया ख़ून

चमक रहा था जमा हुआ

लाल-काला, थक्का

शायद मुँह के बल गिरा था वह

पास ही सेब के दो टुकड़े

पड़े-पड़े उसका मुँह ताक रहे थे

किसी राहगीर ने फेंका होगा

उसे देख खा नहीं पाया होगा

घिन से

भिखमंगों से शहर की ख़राब होती

छवि के प्रति चिंतित

महानगर के मेयर

उसे ना जाने किस कोटि में रखेंगे

परमपद पाने के इतने निकट पहँचे

व्यक्ति को तीसरी बार

देख रहा था मैं

एक वह था

पटना गांधी मैदान से क्लेक्ट्रियट को

जाती सड़क पर

बुझ चुके अलाव पर सिर टिकाए पड़ा

उसके सिर के

एक ओर के बाल

सफ़ाचट हो चुके थे जलकर

नीम लोकतंत्र में

आसानी से मयस्सर

नीम बेहोशी में पड़ा था वह

या फिर पटना सीटीओ के पास

मरता वह व्यक्ति

जिसके बारे में बताया था सबसे पहले

राजस्थान पत्रिका के संवाददाता

प्रियरंजन भारती ने-

कि पानी भी

नहीं पी पा रहा था वह

उसकी साँस ही रुक गई थी पानी को

बाहर फेंकने की

कोशिश में।

थका हुआ आदमी / कुमार मुकुल

थके हुए आदमी को

पहले-पहल पता नहीं होता

अपनी थकान की बावत

कोई पस्त हुआ आदमी ही

पहचानता है उसे

और बताता है

कि वह थक तो नहीं गया !

ऐसे सवाल के मुक़ाबिल

सकपकाता है थका आदमी

और साफ़ मुकर जाता है

कि नहीं है ऐसा

कि बढ़ आई दाढ़ी या ढीले कुर्ते

या नए काटते जूते की वज़ह से

यह ख़ुशफ़हमी हुई है आपको

यह थका हुआ बयान देकर

पसर जाता है वह

सामने की कुर्सी पर

उसके पसरने को घूरता

पस्त हुआ आदमी

इधर-उधर की बातें करता तौलता है

कि इसे वाकई जूते ने काटा है

या उसकी क़ीमत ने

फिर पूछता है

क्या मंगाऊँ चाय या ठंडा

अरे ठंडा ही लाओ

धूप तेज़ है आजकल

बोलता है थका आदमी।

निम्न-मध्यवर्गीय युवक / कुमार मुकुल

भरसक बचता है आईने से

सौंदर्यबोध उसका चुभ जाए किसको कब

और ओढ़ लेनी पड़े निजी बेहयायी

किस पल !

सोचता- मुड़ा ले सर

डरता है

लोग जोड़ेंगे बाबा की बरसी से

टूअर-यतीम जैसे शब्द

प्रिय हो रहे

कोई मानेगा

आँखों में झाँकेगा नहीं

चेहरे से लगेगा

ख़ुशकिस्मत है

तन्दुरुस्त है

सो है

सर्कस के कलाकार भी होते हैं दुरुस्त

पर इनकार कर रहा

तमाशे से ही

बाहर (सर्कस नहीं है दुनिया)

कैसे-कैसे जानवर हों ?

गूंगे लोग / कुमार मुकुल

अक्सर ज़ोर से बोला करते हैं गूंगे लोग

वे समझते हैं

कि ज़ोर से बोलने पर ही

सुनती है दुनिया

इसी भ्रम में

ख़ुद नहीं सुन पाते वे

कि क्या कह रहे हैं

अल्लसुबह उठते ही वे

अपने उत्तरदायित्व के सपनों में

प्रवेश कर जाते हैं

और अपनी ऊँची आवाज़ से

जगा देना चाहते हैं

सारी दुनिया को वे

हर सोए आदमी को

वे अंतर नहीं कर पाते

कि जगाया जा रहा आदमी

सोया है या मरा

आलसी है या थका

वे सबको अपना भजन

सुना देना चाहते हैं

अहिंसक होते हैं गूंगे लोग

वे सोच भी नहीं सकते

कि दूसरों की आवाज़

दबा देना भी

हिंसा है।

बूढ़े बच्चे / कुमार मुकुल

अभाव से नहीं मरते बच्चे

बल्कि ऊबते हैं बचपन से

और जल्दी-जल्दी बड़े हो जाते हैं

खड़े हो जाते हैं पाँवों पर

जल्दी आती है उनकी जवानी

और बढ़ाती है पूंजी को

गूलर के फूल की तरह

फिर ख़ुद ग़ायब हो जाती है

जल्दी आता है उनका बुढ़ापा

और काटे नहीं कटता

फिर बूढ़े बच्चे रचते हैं अपना दर्शन

कि बूढ़े के पास अनुभव होता है

लाचारी होती है

विश्वस्त होता है बूढ़ा

कि लाचार और विश्वस्त अनुभवों की

अच्छी क़ीमत मिलती है बाज़ार में।

उनका मन / कुमार मुकुल

उत्तर रामभक्त हैं वे

`मांग के खइबो मजीद के सोइबो´

लिखने वाले तुलसीदास के

रामचरित मानस में

रम नहीं रहा उनका मन

अब वे

ख़ुद रचना चाहते हैं, राम को

और मज़बूती से चिन देना चाहते हैं

रामशिलाओं के बीच

घट-घट वासी राम

अब नहीं रहे शायद !

कुदाल की जगह / कुमार मुकुल

सायबर सिटी की व्यस्ततम सड़क पर

भटकता बढ़ा जा रहा था श्रमिक जोड़ा

आगे पुरुष के कन्धे पर

नुकीली, वज़नी, पठारी खंती थी

पीछे स्त्री के सिर पर

छोटी-सी पगड़ी के ऊपर

टिकी थी

स्वतन्त्र कुदाल

कला दीर्घाओं में

स्त्रियों के सर पर

कलात्मकता से टिके मटके देख

आँखें विस्फारित हो जाती थीं मेरी

पर कितना सहज था वह दृश्य

अब केदारनाथ सिंह मिलें

तो शायद मैं उन्हें बता सकूँ

कि कुदाल की सही जगह

ड्राइंगरूम में नहीं

एक गतिशील सर पर होती है।

हरसूद / कुमार मुकुल

अपनी ही नींव

खोद रहे हैं वे

और उसमें जमे अंधरे को ढोकर

ले जा रहे हैं

ट्रैक्टर-ट्रालियों पर

इस अंधेरे को लेकर

कहीं भी जा सकते हैं वे

सिवा अदालत के दरवाज़ों के

वहाँ तो पहले से ऐतिहासिक इमारतें ढाहने के

आरोपियों की भीड़ लगी है

ताजमहल के बीस किलोमीटर के घेरे में

नहीं खड़केंगे पत्ते

बस पर्यटक

पैसे उगल सकते हैं वहाँ

क्या सात सौ सालों का इतिहास

दर्शनीय नहीं होता

केवल ऐतिहासिक इमारतों पर ही

धन की वर्षा करेंगे पर्यटक

ऐतिहासिक स्मृतियों का विनाश देखने

पैसे देकर नहीं आएगा कोई

कल को कुछ भी जीवत नहीं बचेगा वहाँ

अभी शेष दिख रहे

मंदिर-मस्जिद भी नहीं

सात सौ सालों से

किसे सिर नवा रहे थे लोग

किसे छोड़कर चले जा रहे हैं आज

उन सफ़ेद दीवारों से घिरे गर्भगृह में

`हम धूनी वहीं रमाएंगे´ गाने वाले

कहाँ खप गए

किस दिशा में जाकर

लोगों को नहीं

मूरतों को तो बचाने निकलें वो।

अंतरिक्ष में विचार / कुमार मुकुल

आजकल विचार

अंतरिक्ष में लटक रहे हैं

जूतों की तरह

विश्वासों की अंधता से बंधे

और हम कुछ नहीं कर पा रहे

सिवाए इसके

कि उन जूतों की टक-टक

अपनी खोपड़ी पर महसूस करें

और एक बुसी हँसी हँसें

जैसी कि

युवा कवि हँसते हैं इन दिनों

मंचों पर अकेला पड़ते ही

कुछ भी खुला नहीं है आज

सिवा मुँह के

कुछ परचूनिए

उसे भी दबा रहे हैं

अपनी घुटी मुस्कराहटों को

बाहर करने की कोशिश में

नहीं

कोई समस्या नहीं

बस देश है, पार्टियाँ हैं, सीमाएँ हैं

और राष्ट्रमंडल के गुलाम देशों का खेल

किरकेट

और उसमें ली गई दलाली है, सट्टे हैं

कहीं कोई प्रतिरोध नहीं

अन्नदाताओं को ओढ़ा दी गई है रामनामी

या तो भरपेटा भजन कर रहे वे

या रामजी-सीता जी की राह पकड़

अपना रामनाम सत कर रहे

इतिहास की प्लास्टिक सर्जरी

की जा चुकी है

मोहक बनाया जा चुका है

उसके छल-कदमों को इरेज करके

द्वारिका ढंढ़ ली है उन्होंने

और अब द्रौपदी का पात्र ढूंढ़ रहे हैं

जिसमें कृष्ण को खिलाया गया था

साग का एक पत्ता

और उसके मिलते ही

जनदुर्वासाओं की मिट्टी

पलीद कर दी जाएगी।

ग्यारह सितंबर / कुमार मुकुल

यह उनका अपना ही विशाल माथा था

जो भरभराकर ढहा आ रहा था

ख़ुद उन्हीं के क़दमों में

और भयाक्रांत भाग रहे थे वे

भाग जाना चाह रहे थे

अपने ही माथे की तनी भृकुटी से

व अपनी ही तीसरी आँख के

वैश्विक प्रकोप से

हिरोशिमा-नागासाकी नहीं था वह

वियतनाम-इराक भी नहीं था

यह उनका अपना ही

सर्वग्रासी, महाबलशाली हाथ था

जो अपना ही मुँह जाब रहा था

उनके ही हथियार थे

बारूद भी उनके ही कारखानों की थी

उनकी अपनी ही खोदी खाइयाँ थीं

और सीढ़ियाँ कम पड़ गई थीं

और उनके पाँव

लाचारी के जलजले में

धँसे जा रहे थे

न्यूटन की गति का तीसरा नियम था यह

जिसे असंख्य बार बेच चुके थे वह

पर जो आज उनके ही घर में

लागू हो रहा था पहली बार

बिक रहा था उनके ही हाथों

उनकी अपनी ही सर्वद्रष्टा आँख थी

कैमरे भी उनके ही थे

जो दुनिया को सब-कुछ दिखा रहे थे

अनगिनत त्रासदियों को

फ़िल्मा चुके थे वे

आज वह फ़िल्म

वे ख़ुद देख रहे थे।

कुमार मुकुल / Kumar Mukul

http://kumarmukulkikavitayen.blogspot.com/

http://hindiacom.blogspot.com/ [कारवॉ KARVAAN]